भारतीय हिन्दी सिनेमा की बदलती तस्वीर

डॉ0 गीता यादव,

अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,
तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर

भारत में सिनेमा का प्रवेश वर्ष 1896 में हुआ था, जब 7 जुलाई को बम्बई के वाट्सन होटल में ल्युमिएर मूविंग पिक्चर्स का पहला सिनेमैटोग्राफ शो हुआ। दिलचस्प बात यह है कि ल्युमिएर ब्रदर्स ने दुनिया में अपना पहला शो पेरिस में दिसम्बर 1895 में किया था और मात्र छः माह बाद ही मनोरंजन की यह नई हवा भारत में आ गई।

शीघ्र ही मुंबई के नावेल्टी थिएटर में ल्युमिएर मूविंग पिक्चर्स के नियमित शो प्रारम्भ हो गये। अंग्रेजों के लिए वाट्सन होटल में टिकट दर एक रूपये तथा नॉवेल्टी में भारतीय दर्शकों के लिए टिकट का मूल्य पच्चीस पैसा (चवन्नी) था। उस समय भारतीय समाज हिन्दी सिनेमा को इतनी हेय दृष्टि से देखता था कि फिल्मों को पसन्द करने वालों को लोग व्यंग्य में ''चवन्नी छाप'' कह कर पुकारते थे।

भारत में लघु फिल्मों की शुरूआत का श्रेय कोलकाता के हीरालाल सेन को जाता है। उनकी पहली फिल्म थी ''द फ्लावर आफ पर्शिया'' और वर्ष था 1898। उसके बाद की फिल्मों को एच0एस0 भाटवड़ेकर, एफ0बी0 थानेवाला, प्रो0 स्टीवेन्सन आदि ने फिल्मी दुनिया में लघु फिल्मों को उतारा। इन लघु फिल्मों की अवधि 2 से 3 मिनट और इनके विषय समाचार पत्रों पर आधारित होते थे। फिल्म आकाश पर ''दादा साहब फाल्के'' के उदय के बाद कहानियों पर आधारित सिनेमा (फीचर फिल्म) ने गति पकड़ी और सम्पूर्ण भारतीय सिनेमा की अवधारणा सामने आयी। यही वह समय था जब भारतीयों के स्वभावानुकूल देशी फीचर फिल्में दिखाई जाने लगीं। स्वदेशी विषयों पर सिनेमा बनाने का ऐसा समय (दौर) चला कि भारतीय फिल्म उद्योग के पितामह ''दादा साहब फाल्के'' विपरीत परिस्थितियों के बावजूद उनके द्वारा बनाई ''राजा हरिश्चन्द्र'' से ही प्रारम्भ होता है। भारतीय फीचर फिल्मों का इतिहास आज दुनिया भर में मनोरंजन का सबसे अच्छा और सस्ता माध्यम है। सिनेमा वह सपना है, जो आज भी किसी न किसी तरह तीन घंटों के लिए ही सही हिन्दुस्तान (भारत) को हँसाते–रूलाते हैं। वह सपने, जो दुनिया की डिक्शनरी में ''हिन्दुस्तान का सिनेमा'' कहलाते हैं।

सिनेमा फ्रांस की देन है, लेकिन यह जब भारत में आया तो इस विधा को लेकर यहाँ कई लोग सक्रिय हो गये। सर्वप्रथम 1910 में एक फिल्म दिखाई गई ''द लाइफ आफ क्राइस्ट''। दो भागों में बनी यह फिल्म विदेश से आई और भारत में दिखाई गई, जिसमें दादा साहब फाल्के एक दर्शक के रूप में थे। यही वह फिल्म थी कि जिसने दादा साहब फाल्के को उस समय चर्चित कहानी राजा हरिश्चन्द्र पर फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया।

शूटिंग के समय महत्त्वपूर्ण समस्या थी महिला कलाकार को ढूँढ़ना, जो उस समय के अनुसार कठिन काम था। प्रयास करने के बाद भी आम कलाकारों को छोड़िये, वेश्याओं ने भी फिल्म में काम करने से मना कर दिया। अथक प्रयास के बाद भी महिला कलाकार नहीं मिली और पुरुष कलाकारों के ही भूमिका के अनुसार महिला

चरित्र के रूप में पेश करने का निर्णय किया। उस फिल्म में सालुंके ने तारामती (महिला) की भूमिका के साथ वेष बदलकर दोहरी भूमिका के रूप में कार्य किया।

दादा साहब फाल्के ने इसका पहला शो कुछ लोगों के लिए 21 अप्रैल 1913 का दिन तय किया। उसी समय फिल्म को प्रेस और बुद्धिमान लोगों से प्रशंसा मिली। प्रशंसा के बाद आम लोगों के समक्ष प्रदर्शन के लिए 3 मई 1913 को कोरोनेशन थिएटर में रिलीज हुई और इतिहास रच गई। पहली बार लगातार उस समय 23 दिनों तक अनवरत चलती रही।

बात उस समय की है जब 1 फरवरी 1912 को हिन्दुस्तान से रवाना होते समय ''धुंडिराज गोविन्द फाल्के'' का उद्देश्य और मंजिल को पाने के लिए एक अनजान देश में सात समुन्दर पार करके, अपनी बीमा पॉलिसी को गिरवी रखकर चल पड़ा। 5 फरवरी 1912 की सर्द सुबह एक जहाज अरब सागर को चीरते हुए लंदन जा पहुँचा। वहाँ दो महीने से कुछ अधिक समय बिताने के बाद जब वे भारत लौटे तो उनके पास सिनेमा के विभिन्न उपकरणों के साथ खुली आँखों से देखे जाने वाले सपनों की भरी एक पोटली थी जो फिल्मांकन से जुड़े खट्टे–मीठे अनुभव।

भारत की पहली फीचर फिल्म कहलाई ''राजा हरिश्चन्द्र'' जिसके बनने की शुरुआत 1912 में हो गई थी। इसकी शूटिंग शुरू हुई तत्कालीन बम्बई (अब मुंबई) के उपनगर दादर से। 21 अक्टूबर 1912 में इसी फिल्म के लिए एक स्कूल के मैदान में पहली बार सेट लगवाया गया और फिल्म की शूटिंग शुरू की गई। इस तरह भारत में प्रथम संपूर्ण फीचर फिल्म बनाने का श्रेय मिला दादा साहब फाल्के को। पहले जुनून की जिन लहरों पर दादा साहब फाल्के ने सवारी की थी वह आज ''बालीवुड'' की सुनामी बन चुकी है। भारतीय सिनेमा का चमकदार और खुशनुमा चेहरा ''बालीवुड'' आज दुनिया भर में सबसे ज्यादा फीचर फिल्में बनाता है। हर साल औसतन 1000 फीचर फिल्मों के साथ भारत हॉलीवुड से भी आगे है। आर्थिक व तकनीकी रूप से समृद्ध हालीवुड में औसतन 600 फिल्में बनती हैं, भारत के बालीवुड ने वर्ष 2009 में तो 1282 का रिकार्ड आँकड़ा छू लिया था।

भारतीयों की तरह दुनिया भर में बसे भारतवासियों के लिए हिन्दी फिल्में मनोरंजन की दुनिया में प्रवेश का पासपोर्ट है। यही कारण है हिन्दी फिल्में अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में संवेदनशील, पारम्परिक और सांस्कारिक व्यवस्था में जगह पाती हैं। हिन्दी फीचर फिल्मों पर कैम्ब्रिज से लेकर मैसाचुसेट्स और कोलम्बिया यूनिवर्सिटी तक शोध कार्य अब आम बात है। सौ वर्ष पूरा करने के बाद भारतीय सिनेमा को यादगार बनाने के लिए पूरे देश में विभिन्न प्रकार के आयोजन किये गये। प्रश्न यह है कि फीचर फिल्मों के इतिहासपुरुष दादा साहब फाल्के ने ''राजा हरिश्चन्द्र'' को बनाने के लिए अपने पत्नी के गहनों को क्यों दाँव पर लगा दिया। क्या दादा साहब ने जिस देश के लिए कुछ अपना और सबसे बेहतर बनाने का सपना था उसे भारतवासियों ने एहसास किया ?

भारतीय फिल्मों की समस्याएँ सीधे समाज से उठाई गई हैं। क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि 'सपने और सिनेमा' अपनी ही भाषा में अच्छे लगते हैं। यही कारण है कि भारतीय सिनेमा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, कलाकृति, तकनीकी समानता, रोमांच, रोमांस, हास्य, सच्चाई, संवेदना, वैश्विक चुनौतियाँ, विज्ञान, व्यवसाय, गाँधीगिरी, साम्प्रदायिकता, महानगरीय हिंसा का महाजाल आदि को एक ऐसे खुबसूरत गुलदस्ते में बदल लिया है, जिसमें हिन्दी, अँग्रेजी, मराठी, मलयालम, बंगाली, पंजाबी, गुजराती, भोजपुरी आदि भाषाओं के फूल खिलते

हैं, जो सुबह के भजन से लेकर रात की लोरी तक अपनी महक बिखरते रहते हैं।

हिन्दी सिनेमा की यह विकास यात्रा अब तक के सफर में भारतीयों के लिए आवश्यकता और संस्कार बन चुकी है। इसी भारतीय समाज में बारात से बिदाई तक भक्ति से लेकर देश भक्ति तक सब कुछ सिनेमा के हवाले है।

देशभक्ति एक ऐसा विषय है, जो भारतीय सिनेमा को प्रत्येक काल में आकर्षित करता रहा है। लेकिन समय के साथ फिल्मों में देश–प्रेम को प्रदर्शित करने का तरीका और नजरिया दोनों बदले हैं। जहाँ आजादी के पहले बनी फिल्मों में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध आन्दोलन की हुंकार थी, वहीं आजादी के बाद देश पर सब कुछ न्यौछावर करने पर बल दिया जाने लगा। 1962 में चीन के युद्ध के बाद देश भक्ति की फिल्मों का अंदाज बदल गया। अब फिल्मों में दुश्मन को धूल चटाने की बातों को दिखाया जाता है। 1971 में पाकिस्तान से युद्ध होने के बाद देश भक्ति की फिल्मों की बाढ़ सी आ गई और ऐसी फिल्में दो दशक तक छायी रही और फिल्मी दुनिया ने अपने बाजार को खूब भुनाया। देश भक्ति की ऐसी फिल्मों का जोश कुछ कम हो रहा था कि कारगिल युद्ध ने फिर इस देश–भक्ति की भावना को झकझोर दिया। यही कारण था कि देशभक्ति की चर्चित फिल्मों में सामाजिक विषमता और न्याय की बातें आने लगीं। ऐसी फिल्मों में देश में भ्रष्टाचार फैला रहे नेताओं और प्रभावशाली लोगों की गद्दारी को सिनेमा की विषयवस्तु बनाया जाने लगा। ''इन्क्लाब'', ''मैं आजाद हूँ'', ''आज का एम.एल.ए.'' और ''तिरंगा'' जैसी फिल्में इसी देशभक्ति की भावना का प्रतिनिधित्व करती हैं। कुछ वर्षों के अन्तराल के बाद कर्मा, 1942 ए लव स्टोरी, बार्डर, मिशन कश्मीर, स्वदेश, चक दे इंडिया तक देशभक्ति की धारा अविरल रूप से बहती गयी।

कुछ समय बाद धीरे–धीरे देशभक्ति की भावना का व्यवसायीकरण होने लगा जिससे दर्शक इससे दूर होते गये। अब फिल्में उन पुराने पैमानों को छोड़ चुकी हैं, जिसमें चीन, पाकिस्तान और आतंकी गतिविधियों के विरूद्ध देशहित में नवयुवकों के दिल में ज्वाला भड़का सके। अब दर्शकों को पता है कि देश के असली दुश्मन देश के भीतर ही भ्रष्टाचार के विविध रूपों में विद्यमान हैं। ऐसी ही विषय वस्तु को लेकर पैनी दृष्टि रखने वाले अनेक युवा फिल्मकार जैसे राजकुमार हीरानी और मधुर भंडारकर आदि ने मुन्ना भाई सीरीज की अपनी दोनों फिल्में ''मुन्नाभाई एम.बी. बी.एस.'' और ''लगे रहो मुन्ना भाई'' में व्यवस्था की बड़े ही अनोखे अंदाज में कलई खोली है। सुपर हिट फिल्म ''थ्री इडियट्स'' में भी इसी व्यवस्था का पर्दाफाश किया गया। सूक्ष्मता से विचार करें तो ये फिल्में भी देशभक्ति की ही हैं। हाँ, पुरानी मान्यताओं के अनुसार जरूर इन्हें देशभक्ति से अलग किया जा सकता है, किन्तु इनकी सार्थकता पर अंगुली नहीं उठायी जा सकती। इसी प्रकार 2010 में ''वीर'', ''रोड टू संगम'', ''लाहौर'', ''क्रान्तिवीर'', ''द रिव्यूलेशन'' और ''रेड एलर्ट'' जैसी फिल्मों में रुढ़ अर्थों में देशभक्ति नहीं थी। ''वीर'' में देश की स्वतंत्रता के लिए एक छोटी–सी जाति को बड़ी ही खुबसूरती और रोचक तरीके से देश के लिए न्यौछावर (मर मिटने) हो जाने को दिखाया गया। फिल्म ''रोड टू संगम'' में जहाँ हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की बात की वहीं गाँधीवाद की प्रासंगिकता पर विशेष बल दिया। इसी तरह पहली बार पाकिस्तान के एक शहर के नाम (लाहौर) फिल्म बनी, जिसमें भारत–पाकिस्तान के बीच सम्बन्धों को मधुर बनाने का प्रयास था। इस फिल्म को दर्शकों व आलोचकों का उचित सहयोग मिला और इसे नेशनल अवार्ड भी प्रदान किया गया।

''क्रान्तिवीर'', ''द रिव्यूलेशन'' ने तो युवाओं में भ्रष्टाचार के विरूद्ध तीव्र उत्तेजना को रेखांकित किया। परिणामस्वरूप विचारोत्तेजक

फिल्में रिलीज हुईं, जिसमें भ्रष्टाचार, देश की न्यायिक व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार किया गया। बहुचर्चित जेसिका लाल हत्याकांड पर फिल्म के माध्यम से निर्भीक तरीके से असरदार अपराधियों को कटघरे में खड़ा किया गया। इस फिल्म (नो वन किल्ड जेसिका) को दर्शकों ने खूब पसंद किया और जेसिका के हत्यारों को सजा देने की माँग ने पूरे देश को एकसूत्र में बाँध दिया। देश न्याय–व्यवस्था को असरदार बनाने की भावना ही इस फिल्म की देशभक्ति की श्रेणी में रखती है। इसी तरह फिल्म ''अंजान'' में आतंक के भय और पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार को प्रामाणिक तरीके से प्रस्तुत किया गया।

3 फरवरी, 2012 को रिलीज हो रही गली गली में चोर है भी व्यापक अर्थों में देशभक्ति की ही फिल्म है, जिसमें भारत नामक एक बैंक कैशियर का भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन दिखाया गया है, जो अन्ना हजारे और उनकी पूरी टीम की भावनाओं को रेखांकित करती है।

बेशक हम आजाद हैं, लेकिन भ्रष्टाचार के गुलाम भी हैं। इस दर्द को फिल्म जगत भी महसूस करता है। फिल्मों के माध्यम से बालीवुड की कई हस्तियों ने महती भूमिका का निर्वहन किया है, और यह सिलसिला अभी थमा नहीं है। आवश्यकता है हमें अनुशासित करने और आने वाली पीढ़ियों को सुरखित करने के लिए फिल्मों के द्वारा सामाजिक व राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करना। हमारी सबसे बड़ी शक्ति है कि विभिन्न जाति और धर्मों से जुड़े होने के बाद भी एक दूसरे के प्रति सहयोग, प्रेम और सम्मान की भावना जिसे फिल्मों के द्वारा ही समाज की जड़ों तक पहुँचाया जा सकता है। क्योंकि आज लोगों में यह विचार घर करता जा रहा है कि समृद्ध जीवन जीने के लिए पैसा (धन) सब कुछ है, इसलिए इसे किसी भी प्रकार से कमाना पाप नहीं है। यही अभिलाषा हिंसा, आतंक और भ्रष्टाचार के रूप में अंकुरित होती है। वास्तव में आजादी तब होगी जब सभी राजनीतिक दल राष्ट्रीय दृष्टिकोण के साथ क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले होंगे। तभी देश को सच्ची आजादी मिलेगी। समय का चक्र तेजी से बदल रहा है। प्रत्येक वह वस्तु हमारे मन मस्तिष्क में जगह बना लेती है, जिसे दृश्य के रूप में हमने देखा है। इसीलिए फिल्मों में जनमानस को प्रभावित करने एवं उनके दिल को जीतने की क्षमता और समय से टकराने का गहरा माद्दा भी होता है। जनमानस जितने गहरे रूप से फिल्मों से प्रभावित होता है उतना किसी अन्य माध्यम से नहीं। जन शिक्षा के रूप में फिल्म विकसित अवस्था में है और विज्ञान की सहायता से यह निरन्तर भारतीय समाज का अनंत विस्तार कर आदर्श को यथार्थ में बदलने का अचूक प्रयास है। बदलते भारत की बेबस तस्वीर को बदलने में भारतीय सिनेमा सक्षम प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. दैनिक जागरण, 5 फरवरी, 2012
2. अमर उजाला, 14 अगस्त, 2011
3. अमर उजाला, 22 जनवरी, 5 फरवरी 2012
4. संसद से सड़क तक, धूमिल, जनतंत्र के सूर्योदय.
5. अवस्थी आदित्य : सिनेमा के विविध आयाम : योजना, अगस्त 2011, पृ0 31–33.
6. सिंह प्रताप : दादा फाल्के, कहानी भारतीयता का रूपक तैयार होने की, योजना, जून 2011, पृ0 37–39.